(स्वास्थ्य का मूलाधार : सम्यक् चिन्तन भाग-1)

अच्छे स्वास्थ्य के मापदण्ड

डॉ. चंचलमल चोरडिया

क्या कोरोना संक्रामक रोग है?

कोरोना जैसे सामान्य रोग के संक्रमण ने आधुनिक चिकित्सा की प्रभावशालीता, विश्वसनीयता, वैज्ञानिकता एवं उसके उपचार से पड़ने वाले दुष्प्रभावों का सत्य उजागर कर दिया है। स्वास्थ्य मंत्रालय के पास अच्छे स्वास्थ्य, अच्छी चिकित्सा पद्धति, अच्छे चिकित्सक एवं विश्वसनीय रोग निदान के मापदण्ड नहीं है, जिसके आधार पर विभिन्न चिकित्सा पद्धतिया की तुलना की जा सके। फिर भी प्रभावशाली अच्छी अनुभूत चिकित्सा पद्धतियों की उपेक्षा कर रहा है। क्या आधुनिक चिकित्सकों द्वारा घोषित कोरोना से मुक्त अपने आपको स्वस्थ मानने का दावा कर सकता है? गत चंद वर्षों से फैलने वाले स्वाइन फ्लु, चिकनगुनिया, इबोलो, कोरोना जैसे रोग आधुनिक चिकित्सा पद्धति के असफलताओं का ही प्रतीक है। स्वास्थ्य मंत्रालय स्वास्थ्य नीति निर्धारण में आधुनिक चिकित्सकों एवं दवा निर्माताओं के दबाव में एलोपेथिक चिकित्सा पद्धति के हितों को ही प्रोत्साहन दे रहा है। एलोपेथिक दवाईयाँ न केवल दुष्प्रभावों को जन्म देती है, अपितु शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को भी कम करती है।

शिवाम्बु, एक्युप्रेशर, स्वर, ध्यान, चुम्बक एवं सूर्य किरण जैसी अनेक स्वावलम्बी, अहिंसात्मक चिकित्सा में कोरोना जैसे किसी भी संक्रामक रोग से सुरक्षा

सहयोग राशि 20/-

:: प्रकाशक ::

कल्याणमल चंचलमल चोरडिया ट्रस्ट, जोधपुर

चोरडिया भवन, गोल बिल्डिंग रोड, जालोरी गेट के बाहर,

जोधपुर-342003 (राज.)

फोन: 0291-2621454, 94141-34606 (मो.), 63753-58239 (व्हाट्सएप्प)

Website : www.chordiahealth.com

प्रबुद्ध पाठकों की दृष्टि में ''आरोग्य आपका''

आरोग्य आपका में विभिन्न 40 पुस्तकों की स्वास्थ्य संबंधी जानकारी को एक ही पुस्तक में समेट लिया है। *So, it is better to carry or to have one book* ''आरोग्य आपका''*rather than to carry 40 books weighing 40 kg.*

-Dr. R.C. Sharma (Ph.D.) Fruit Technologist, H-P-Fruit Canning Unit, Kangra (H.P.)

''आरोग्य आपका'' पुस्तक को मैं स्वास्थ्य वेद के नाम से अभिहत करना न्यायसंगत समझता हू। वास्तव में यह मानव स्वास्थ्य की अर्चना, पूजा, आराधना, साधना, वेदना सभी कुछ है। पुस्तक स्तुल्य है और इसकी जितनी प्रशंसा की जाए उतनी कम है। ऐसी पुस्तक का घर परिवार में होना एक सौभाग्य की बात है। सच्चे अर्थों में यह पुस्तक स्वास्थ्य सूर्य का प्रकाश पुंज है। अतः जहाँ यह पुस्तक है, वहाँ अस्वास्थ्य का अंधकार रह ही नहीं सकता।

-संपादक, निरामय जीवन, स्वास्थ्य साधना केन्द्र, जोधपुर (राज.)

प्राकृतिक चिकित्सा के विभिन्न पहलुओं को जिस सुंदर ढंग से डॉ. चोरडिया ने अपनी पुस्तक 'आरोग्य आपका' में प्रस्तुत किया है, वह विलक्षण भी है और नितांत प्रशंसनीय भी।

-स्व. अत्तरसिंह, एक्युप्रेशर हेल्थ सेंटर, चण्डीगढ़ (पंजाब)

भारत के छः लाख गांवों के लिये कैसी चिकित्सा पद्धति होनी चाहिये। मेरे इस प्रश्न का जवाब यह पुस्तक है।

-मुरारीलाल सर्राफ, सर्वोदय विचार परिषद्, महात्मा गांधी रोड़, कलकता

स्वास्थ्य के विषय में आज हजारों पुस्तकें उपलब्ध हैं, परन्तु सहज, सरल, समग्र, दृष्टिकोण से पूरिपूर्ण इस पुस्तक को जितनी बार पढ़ा जायेगा, कुछ न कुछ इसमें नयापन लगेगा।

-स्व. प्रोफेसर आलमसिंहजी

क्षण चाहे फुरसत के हों या व्यस्तता के 'आरोग्य आपका' जैसी अच्छी पुस्तकें अवश्य पढ़नी चाहिये।

-मुनि चन्द्रप्रभसागर, संबोधिधाम, जोधपुर

स्वास्थ्य संबंधी जानकारियों से भरी यह पुस्तक हीरों की खान से कम नहीं है। ऐलोपैथिक चिकित्सा प्रणाली में स्नातक होते हुये भी इस पुस्तक को पढ़कर यह महसूस करता हूँ कि हमारा ज्ञान अभी भी काफी कम है। श्री चंचलमलजी चोरडिया साहब का यह प्रयास निसंदेह एक मील का पत्थर साबित होगा। आपके तर्कपूर्ण वैज्ञानिक विश्लेषण सचमुच मस्तिष्क को यह मानने पर मजबूर करते हैं कि आज के इस युग में स्वस्थ रहने का इससे सरल और सस्ता रास्ता कोई नहीं हो सकता।

-डॉ महेन्द्र इन्द्रचंद जैन (M.B.B.S.), मुम्बई (महा.)

यह पुस्तक देश के हर घर में होनी चाहिए और प्रत्येक परिवार को इसका लाभ उठाना चाहिये।

-रसवैद्य डॉ. प्रेमदत्त पाण्डेय, प्रधान सम्पादक, निरोगधाम, इन्दौर

'आरोग्य आपका' पुस्तक एक में अनेक एवं अनेक में एक है। मेरे मतानुसार यह पुस्तक एक ऐसी स्वास्थ्य भागवत् के समान है, जिसको पढ़ते-पढ़ते व्यक्ति साध्य व असाध्य रोगों से लाभान्वित हो सकता है।

- डॉ. सुधीर खेतावत, *President of Indian Academy of Acupressure Science, Indore*

मैंने अपने जीवन काल में इतनी गंभीर व ज्ञान गुढ़ पुस्तक, जो इतनी सरल भाषा में, पहली बार पढ़ी है। जिसे पढ़कर हमें अपनी आन्तरिक शक्तियों का आभास हुआ।

-श्री गणपत कुमार वैष्णव, भूतपूर्व सिविल न्यायाधीश, सिवाना

अच्छे स्वास्थ्य के मापदण्ड

एक व्यक्ति ने अपने पड़ौसी अथवा स्नेही परिजन को कहा-''कृपया आप मेरे घर की सुरक्षा का ख्याल रखना।'' पड़ौसी अथवा परिजन ने उसके अनुरोध का कारण पूछा। व्यक्ति ने सहज भाव से उत्तर दिया- ''सर्दी का मौसम है और आसपास चोरों का भय है। मैं घर में ही निद्रा ले रहा हूँ। मेरी निद्रा में बाधा उत्पन्न नहीं हो, इसी कारण आपके सहयोग की अपेक्षा है।'' क्या ऐसे व्यक्ति को हम असजग, आलसी अथवा निष्क्रिय तो नहीं कहते? अपने स्वास्थ्य के सम्बन्ध में आज अधिकांश व्यक्तियों की स्थिति लगभग ऐसी ही है।

पहला सुख निरोगी काया जानते-मानते और आवश्यक होते हुए भी आज का मानव कितना स्वस्थ एवं सुखी है? यह जनसाधारण से छिपा हुआ नहीं है। प्रत्येक मनुष्य जीवन पर्यन्त स्वस्थ रहना चाहता है, परन्तु चाहने मात्र से तो स्वास्थ्य प्राप्त नहीं हो जाता। मृत्यु निश्चित है। जन्म के साथ आयुष्य के रूप में श्वासों का जो खजाना लेकर हम जन्म लेते हैं, वह धीरे-धीरे क्षीण होता जाता है। जीवन के अंतिम क्षणों तक उस संचित, संगृहित प्राण ऊर्जा के प्रवाह को संतुलित, नियन्त्रित एवं सही संचालित करके तथा उसका सही उपयोग करके ही हम शांत, सुखी एवं स्वस्थ रहकर दीर्घ जीवन जी सकते हैं।

जीवन क्या है?

जन्म और मृत्यु के बीच की अवस्था का नाम जीवन है। जीवन को समझने से पूर्व जन्म और मृत्यु के कारणों को समझना आवश्यक होता है। जिसके कारण हमारा जीव विभिन्न योनियों में भ्रमण करता है। जन्म और मृत्यु क्यों? कब? कैसे और कहाँ होती है? उसका संचालन और नियन्त्रण कौन और कैसे करता है? सभी की जीवन शैली, प्रज्ञा, सोच, विवेक, भावना, संस्कार, प्राथमिकताएँ, उद्देश्य, आवश्यकताएँ आयुष्य और मृत्यु का कारण और ढंग एक-सा क्यों नहीं होता? मृत्यु के पश्चात् अच्छे से अच्छे चिकित्सक का प्रयास और जीवन दायिनी समझी जाने वाली दवाईयाँ क्यों प्रभावहीन हो जाती हैं? मृत्यु के पश्चात् शरीर के कलेवर को क्यों जलाया, दफनाया अथवा अन्य किसी विधि द्वारा समाप्त किया जाता है?

प्रकृति का संचालन निश्चित नियमों और सिद्धान्तों के आधार पर होता हैं। प्रकृति के कानून सनातन होते हैं। किसी की दुआ, इच्छा, कामना अथवा अभिशाप उन्हें बदल नहीं सकते। मनुष्य चाहे अथवा नहीं चाहे, इस विशाल ब्रह्माण्ड में उसे असंख्य जीवों तथा पदार्थों के बीच जीना पड़ता है। व्यक्ति में होने वाले प्रतिक्षण बदलाव तथा उसके द्वारा होने वाली गतिविधियों का सम्बन्ध न केवल स्वयं की आत्म स्थिति पर ही निर्भर करता है, अपितु सृष्टि के सनातन नियमों और कानूनों द्वारा भी प्रभावित होता है। सभी की आयु एक जैसी क्यों नहीं होती ?किसी की बुद्धि, मन, इन्द्रियों और शरीर का पूर्ण विकास होता है तो कुछ जन्म से ही अविकसित, असन्तुलित, विकलांग अथवा अस्वस्थ क्यों होते हैं?

मानव जीवन अमूल्य है-

मानव जीवन अमूल्य है। वस्तु जितनी मूल्यवान होती है, उसका उपयोग उसके अनुरूप करने वाला ही सच्चा ज्ञानी होता है। लाखों रुपये मासिक वेतन पाने वाले कारखाने के किसी मेनेजर को झाड़ू लगाने का कार्य लेने वाले को व्यावहारिक जगत में हम बुद्धिमान नहीं कहते। चाय की जो प्याली पाँच रुपए में मिलती है, उसके लिए हजार रुपए देने वाला ना-समझ होता है। उसी प्रकार वे सभी व्यक्ति बुद्धिमानों की श्रेणी में नहीं आते जो जानते हैं कि अमुक प्रवृत्ति उनके स्वास्थ्य अथवा जीवन के लिए हानिकारक है, फिर भी उनसे नहीं बचते और जो यह जानते है कि अमुक प्रवृत्तियों से शांति मिलती है, तनाव दूर होता है, निर्भयता आती है, स्वास्थ्य अच्छा रहता है, फिर भी उनकी उपेक्षा करते हैं। मृत्यु के लिए सौ सर्पो के काटने की आवश्यकता नहीं होती। एक सर्प का काटा व्यक्ति भी कभी-कभी मर सकता है। ठीक उसी प्रकार कभी-कभी बहुत छोटी लगने वाली हमारी गलती अथवा उपेक्षावृत्ति भी भविष्य में रोग का बहुत बड़ा कारण बन जीवन की प्रसन्नता-आनन्द सदैव के लिए समाप्त कर देती है।

अज्ञान सभी दु:खों का मूल हैं-

कोई भी रोग बाजार में नहीं मिलता। आकस्मिक दुर्घटनाओं एवं जन्मजात रोगों को छोड़कर खराब स्वास्थ्य के लिए प्राय: व्यक्ति स्वयं ही जिम्मेदार होता है। स्वास्थ्य के लिए हमारे शरीर में समाधान है, प्रकृति में समाधान है, वातावरण में समाधान है। भोजन, पानी और हवा के सम्यक् उपयोग और विसर्जन में समाधान है। समाधान भरे पड़े हैं, किन्तु उस व्यक्ति के लिए कोई समाधान नहीं है जिसमें अज्ञान भरा पड़ा है। स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों का सही ज्ञान न होना व उनका उल्लंघन करना सभी रोगों का मूल कारण है। प्रकृति किसी भी ज्ञानी या अज्ञानी को नियम विरूद्ध कार्य करने के लिए क्षमा नहीं करती।

स्वास्थ्य का सम्यक् दर्शन-

सम्यक् दर्शन का सीधा-सादा सरल अर्थ होता है। सही दृष्टि, सत्य दृष्टि, सही विश्वास। अर्थात् जो वस्तु जैसी है, जितनी महत्त्वपूर्ण है, जितनी उपयोगी है, उसको उसके स्वरूप, गुण एवं धर्म के आधार पर जानना, मानना और उसके अनुरूप आचरण करना। सम्यक् दर्शन से स्वविवेक जाग्रत होता है। स्वदोष दर्शन की प्रवृत्ति विकसित होती है। आत्मा और शरीर का भेद ज्ञान होता है। आत्मा का साक्षात्कार होने से उसकी अनन्त शक्ति का भान होने लगता है।

आत्मा ही जीवन है-

हमारे जीवन का प्रारम्भ और अन्त शरीर में आत्मा यानी जीव या चेतना की उपस्थिति पर निर्भर करता है। मृत्यु के पश्चात शरीर से ऐसा कौनसा तत्त्व है, जिसके निकल जाने के पश्चात् इस जड़/निर्जीव/ अचेतन शरीर का कोई मूल्य नहीं होता? मृत्यु के पश्चात् भी शरीर में प्रत्यक्ष रूप में सभी अंगों, उपांगों, भौतिक इन्द्रियों की उपस्थिति होने के बावजूद सभी क्यों निष्क्रिय हो जाते हैं? इस नश्वर/ जड़ शरीर को मृत्यु के पश्चात शीघ्रातिशीघ्र जलाकर या दफनाकर अथवा अन्य किसी विधि द्वारा नष्ट करना ही क्यों श्रेयष्कर होता है? मृत्यु के पश्चात् डॉक्टरों की विश्वासपात्र, प्राणदायिनी आक्सीजन, रक्त, जीवन रक्षक दवा और इंजेक्शन, जड़ी-बूटियाँ, यंत्र, तंत्र, मंत्र, यौगिक क्रियाएँ एवं लम्बे-चौड़े दावे करने वाले डॉक्टर और चिकित्साएँ क्यों प्रभावहीन हो जाते हैं?

आत्मा ही स्वास्थ्य का मूलाधार-

स्वास्थ्य विज्ञान का मूलाधार आत्मा है। प्रत्येक जीव जीना चाहता है, मरना कोई नहीं चाहता। प्रत्येक जीव स्वाधीन, स्वतंत्र रहना चाहता है। पराधीनता, परावलम्बन और बन्धन उसे पसन्द नहीं। तीसरी बात प्रत्येक जीव शान्त, सुखी और स्वस्थ रहना चाहता है। संसार का यह सनातन सिद्धान्त है। जितना-जितना इन सनातन नियमों के पालन में प्रत्यक्ष परोक्ष रूप से सहयोग किया जाएगा, उतना- उतना पुण्य अथवा शुभ कर्मों का उपार्जन होगा। इसके विपरीत इन सिद्धान्तों की पालना में जितना व्यवधान डाला जाएगा, अवरोध पैदा किया जाएगा, उतना-उतना अशुभ कर्मो का या पाप का उपार्जन होता जायेगा। जो पाप से डरेगा, वह पाप से बचेगा। अत: हमारा जीवन पाप और पुण्य, शुभ और अशुभ कर्मो से प्रभावित होता है। जब जीवन में पाप का पलड़ा भारी हो जाता है अथवा अशुभ कर्मो का उदय होता है तो हमारे प्रतिकूल परिस्थितियाँ, वियोग, दु:ख पीड़ा, तनाव, रोग आदि के प्रसंग बनते हैं। अत: स्वस्थ रहने के लिए अशुभ कर्म के बन्धनों के कारणों को समझ उनसे बचने का यथा सम्भव प्रयास करना चाहिए।

अनन्त शक्ति का स्रोत आत्मा-

आत्मा में अनन्त शक्तियाँ हैं, जो उसकी शुद्धावस्था में प्रकट होती हैं। जब आत्मा पूर्ण शुद्ध हो जाती है तो, उसमें सृष्टि की समस्त प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष घटनाएँ दर्पण की भांति प्रतिबिम्बित होने लगती हैं। आत्मा परमात्मा बन जाती है। ऐसी अवस्था को वीतराग अवस्था अथवा केवल ज्ञान की स्थिति कहते हैं। जहाँ सारा अज्ञान दूर हो जाता है, केवल ज्ञान ही शेष रहता है। सम्पूर्ण आत्मानुभूति की अवस्था में आज की भौतिक जानकारी तो होती ही है, परन्तु उससे भी आगे ब्रह्माण्ड के भूत, भविष्य एवं वर्तमान की सूक्ष्मतम एवं सम्पूर्ण जानकारी भी होती है। वे ही वास्तव में सच्चे एवं बड़े वैज्ञानिक होते हैं, और उनका कथन ही वैज्ञानिक होता है, वे सत्य के प्रेरणा स्रोत होते हैं। उनका उपदेश न केवल भौतिक उपलब्धियों तक ही सीमित होता है, अपितु जीवन के परम लक्ष्य तक का मार्ग दर्शन करता है। उसमें नर से

नारायण, आत्मा को परमात्मा बनाने की क्षमता होती है। मानसिक और आत्मिक स्वास्थ्य, शांति और समाधि के लिए ऐसे महापुरुषों के निर्देशानुसार विवेक पूर्ण जीवन चर्या आवश्यक होती है।

प्राण ऊर्जा का महत्त्व-

संसार में दो तत्त्व मुख्य हैं। प्रथम जीव, आत्मा और चेतना एवं दूसरा अजीव, जड़ या अचेतन। इन तत्त्वों से ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की संरचना होती है। इसी आधार पर ऊर्जा को भी मोटे रूप में दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। पहली चैतन्य अथवा प्राण ऊर्जा और दूसरी भौतिक ऊर्जा। जिस ऊर्जा के निर्माण, वितरण, संचालन और नियन्त्रण हेतु चेतना की उपस्थिति आवश्यक होती है, उस ऊर्जा को प्राण ऊर्जा और बाकी सभी ऊर्जाओं को जड़ अथवा भौतिक ऊर्जा कहते हैं। भौतिक विज्ञान प्रायः जड़ पर ही आधारित होता है। अतः उसकी सारी शोध एवं चिन्तन जड़ पदार्थो तक ही सीमित रहती है। जब तक शरीर में आत्मा अथवा चेतना का अस्तित्व रहता है, प्राण ऊर्जा क्रियाशील होती है। मानव जीवन का महत्व होता है, परन्तु उसकी अनुपस्थिति में अर्थात् मृत्यु के पश्चात् प्राण ऊर्जा के अभाव में मानव शरीर का कोई महत्त्व नहीं। अतः उसको जला अथवा दफना कर नष्ट कर दिया जाता है।

प्राण ऊर्जा के मूल स्रोत-

मां के गर्भ में आते ही कर्मो की स्थिति के अनुसार जीव को एक विशेष प्रकार की ऊर्जा प्राप्त होती है जिसके द्वारा जीव आहार को शरीर एवं इन्द्रियों में परिणत करता है। इस परिणमन करने वाली जीवन दायिनी मूल ऊर्जा को पर्याप्ति (Bio Potential Energy Source) कहते हैं। मनुष्य को आहार, शरीर, इन्द्रिय के अलावा श्वासोच्छवास, भाषा और मन पर्याप्तियाँ भी प्राप्त होती है। श्वासोच्छवास पर्याप्ति से ही वायुमण्डल से श्वसन योग्य पुद्गलों को ग्रहण कर जीव शरीर के लिये आवश्यक विशेष ऊर्जा में परिणित करता है। भाषा पर्याप्ति के कारण ही जीव भाषा योग्य सूक्ष्म पुद्गलों को ग्रहण कर बोलने की योग्यता प्राप्त करता है। जिन जीवों में भाषा पर्याप्ति का अभाव होता है, वे मुंह होते हुए भी बोल नहीं सकते। मन पर्याप्ति के प्रभाव से जीव में मनोवर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण कर द्रव्य मन की सहायता से चिन्तन मनन में परिणत करने की क्षमता प्राप्त होती है। जिन जीवों को मन पर्याप्ति प्राप्त नहीं होती, वे मनुष्य की भांति मनन, चिन्तन, अध्ययन आदि नहीं कर सकते। उपचार करते समय जब तक चेतना के विकास के इस क्रम की उपेक्षा होगी, निदान अपूर्ण और उपचार अस्थायी होगा।

प्राण क्या है ?

जिस शक्ति विशेष द्वारा जीव जीवित रहता है अर्थात् जीवन जीने की शक्ति को प्राण कहते हैं। कानों के द्वारा शब्दों को ग्रहण करने अथवा सुनने की शक्ति विशेष को श्रोत्रेइन्द्रिय बल प्राण, आंखों के द्वारा देखने की शक्ति विशेष को चक्षुइन्द्रिय बल प्राण। नासिका द्वारा गंध ग्रहण करने की शक्ति विशेष को घ्राणेन्द्रिय बल प्राण, जीभ द्वारा स्वाद का अनुभव कराने की शक्ति विशेष को रसनेन्द्रिय बल प्राण, शरीर द्वारा ठण्डा-गरम, कोमल-कठोर, हल्का-भारी आदि स्पर्श का ज्ञान कराने वाली शक्ति विशेष को स्पर्शेन्द्रिय बल प्राण, मन से चिंतन मनन करने की शक्ति को मनोबल प्राण, भाषा वर्गणा के पुद्गलों की सहायता से वाणी की अभिव्यक्ति की विशेष ऊर्जा वचन बल प्राण, शरीर के माध्यम से उठने-बैठने, हलन-चलन करने की विशेष शक्ति काय बल प्राण, श्वासोच्छवास वर्गणा के पुद्गलों की सहायता से श्वास लेने और बाहिर निकालने की शक्ति विशेष श्वासोच्छवास बल प्राण तथा निश्चित समय तक निश्चित योनी में जीवित रहने की शक्ति विशेष आयुष्य बल प्राण कहलाती है। आयुष्य बल प्राण के अभाव में अन्य प्राणों का कोई अस्तित्व नहीं होता। प्रत्येक व्यक्ति की एक निश्चित आयुष्य होती है जिसका निर्धारण उसके पूर्व भव में ही हो जाता है। अन्य प्राणों की स्थिति बदल सकती है। क्षय के साथ-साथ उन प्राणों का निर्माण भी हो सकता है। प्राणों की विविधता के कारण ही प्रत्येक व्यक्ति के सुनने, देखने, चखने, सूंघने, चिंतन मनन करने, वाणी की अभिव्यक्ति आदि अलग-अलग होती है। कभी-कभी भौतिक उपचारों से कान, नाक, चक्षु, जीभ आदि इन्द्रियों के द्रव्य उपकरणों में उत्पन्न खराबी को तो दूर किया जा सकता है परन्तु उनमें प्राण ऊर्जा न होने से भौतिक उपचार सदैव सफल नहीं होते। इसी कारण सभी नेत्रहीनों को नेत्र प्रत्यारोपण द्वारा रोशनी नहीं दिलाई जा सकती। सभी बहरे उपकरण लगाने के बाद भी सुन नहीं सकते। मूर्ति में मानव की आंख लगाने के बाद भी उसमें देखने की शक्ति नहीं आ जाती।

प्राण ऊर्जा का अपव्यय हानिकारक-

पांचों इन्द्रियों, मन, वचन, काया का संयम स्वास्थ्य में सहायक होता है तथा उनका असंयम रोगों को आमन्त्रित करता है। हवा, भोजन और पानी से ऊर्जा मिलती है परन्तु उनका उपयोग कब, कैसे, कितना, कहाँ करने का सम्यक् ज्ञान और उसके अनुरूप आचरण आवश्यक होता है? स्वाध्याय, ध्यान, कायोत्सर्ग भी ऊर्जा के स्रोत होते हैं, जिसका जीवन में आचरण आवश्यक होता है। प्राण ऊर्जा के सदुपयोग से शरीर स्वस्थ, मन संयमित, आत्मा जागृत और प्रज्ञा विकसित होती है।

शरीर से ही आत्मा और मन के भावों की अभिव्यक्ति संभव होती है-

मन शरीर के सभी विषयों को अभिव्यक्त करने की क्षमता रखता है। मन और वचन का अलग से कोई अस्तित्व नहीं होता। सभी बनते हैं चित के द्वारा। जो मन के लिये सामग्री चाहिये उसका आकर्षण काया के द्वारा ही होता है। मनन से पहले और मनन के बाद में भी मन नहीं होता। उसी प्रकार बोलने के पहले और बोलने के पश्चात् वाणी नहीं होती। भाषा और मन का अस्तित्व शरीर पर निर्भर होता है। जीव शरीर को उत्पन्न करता है। शरीर वीर्य को उत्पन्न करता है और वीर्य, मन, वचन और काया की हलन-चलन को उत्पन्न करता है। सारी शक्ति का केन्द्र, सारी शक्ति का संचालन, नियंत्रण और आत्मा की समस्त अभिव्यक्तियाँ शरीर के द्वारा ही होती है। शरीर हमारी सारी शक्ति का उत्पादक यंत्र है। जहां से ये शक्तियाँ विभिन्न मार्गों में प्रवाहित होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार आत्मा से शरीर और मन, मस्तिष्क प्रभावित होते हैं, उसी प्रकार शरीर की गतिविधियों से मन और आत्मा भी प्रभावित होते हैं। जिस स्तर का रोग हो उसके अनुरूप उपचार करने से ही स्थायी एवं प्रभावशाली परिणाम शीघ्र प्राप्त होते हैं।

मानव शरीर की विशेषताएँ-

मानव जीवन की संरचना विश्व का एक अद्भूत आश्चर्य है। उसके रहस्य को दुनियाँ का बड़े से बड़ा डॉक्टर और वैज्ञानिक पूर्ण रूप से समझने में असमर्थ है। मस्तिष्क जैसा सुपर कम्प्यूटर, हृदय एवं गुर्दे जैसा रक्त शुद्धिकरण यंत्र, आमाशय, तिल्ली, लीवर जैसा रासायनिक कारखाना, आँख के समान कैमरा, कान के समान श्रवण यंत्र, जीभ के समान वाणी एवं स्वाद यंत्र, लिम्फ प्रणाली जैसी नगर निगम के समान सफाई व्यवस्था, नाड़ी तंत्र के समान मीलों लम्बी संचार व्यवस्था, अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के समान सन्तुलित, नियंत्रित, संयमित, न्यायिक, प्रशासनिक व्यवस्था, अवांछित तत्त्वों के विसर्जन की व्यवस्था, प्रकाश से भी तेज गति वाला मन इत्यादि अन्यत्र निर्मित उपकरणों अथवा अन्य चेतनाशील प्राणियों में एक साथ मिलना असम्भव है। शरीर के ऊपर त्वचा न होती तो कैसी स्थिति होती? क्या हमने कभी कल्पना की?

शरीर अपने लिए आवश्यक रक्त, मांस, मज्जा, हड्डियॉ, वीर्य आदि तत्त्वों का निर्माण चेतना के सहयोग से स्वयं करता है, जिसे अन्यत्र प्रयोगशालाओं में बनाना अभी तक सम्भव नहीं हुआ है। हमारे शरीर में पसीने द्वारा त्वचा के छिद्रों से पानी तो आसानी से बाहर आ सकता है, परन्तु पानी में त्वचा को रखने से, उन छिद्रों से पानी भीतर नहीं जा सकता। प्रत्येक शरीर का कुछ न कुछ वजन होता है, परन्तु चलते-फिरते शायद ही किसी को अपना वजन अनुभव होता है। हमारे शरीर का तापक्रम साधारणतया: 98.4 डिग्री फारेहनाइट होता है, भले ही बाहर कितनी ही सर्दी अथवा गर्मी में सहारा मरूस्थल जैसे गर्म स्थानों पर, शरीर का तापक्रम 98.4 डिग्री फारेहनाइट ही रहता है। हम देखते हैं जब कभी ऑधी या तेज हवाएँ चलती है, तब हल्के पदार्थ एक स्थान से दूसरे स्थान पर उड़कर चले जाते हैं। परन्तु हलन-चलन, उठने-बैठने एवं दौड़ने के बावजूद शरीर की कोई भी नाड़ी अपना स्थान नहीं छोड़ती। यदि हम शीर्षासन करें तो हृदय अपना स्थान नहीं छोड़ता। शरीर के सभी अंग, उपांग, नाड़ियाँ, हड्डियाँ, हलन-चलन के बावजूद कैसे अपने स्थान पर स्थिर रहते हैं? क्या यह वास्तव में आश्चर्य नहीं है।

जहाँ जीवन है, वहाँ समस्याएँ तो निश्चित आएगीं, परन्तु हमारा सम्यक् दृष्टिकोण हो जाने से उनसे हम व्यर्थ परेशान नहीं हो सकेंगे। मानसिक शांति होने से शारीरिक रोगों की संभावनाएँ भी क्षीण हो जायेंगी।

शारीरिक क्षमताओं का दुरुपयोग अनुचित-

यदि कोई लाखों रुपये के बदले आपके शरीर का कोई अंग, उपांग अथवा इन्द्रियाँ आदि लेना चाहे तो यथा-सम्भव कोई व्यक्ति नहीं देना चाहेगा। क्योंकि पैसों से उन अंगों को पुनः प्राप्त नहीं किया जा सकता। यहाँ तक लाखों रुपयों के बदले यदि आपको 15 मिनट श्वास रोकने का आग्रह करें तो क्या आप ऐसा करना चाहेंगे? नहीं! कदापि नहीं। मृत्यु के पश्चात् उस पैसे क्या उपयोग? क्या हमने कभी सोचा कि ऐसी अमूल्य श्वास से जो हमें प्रतिक्षण निःशुल्क मिल रही है उसे हम बराबर तो ले रहे हैं अथवा नहीं? इतने अमूल्य मानव जीवन का उपयोग हम कैसे कर रहे हैं? यदि कोई रुपयों के नोटों के बण्डल को चाय बनाने के लिए ईधन के लिए जलाएँ तो हम उसे मूर्ख अथवा पागल कहते हैं। तब इस अमूल्य मानव जीवन की क्षमताओं का दुरुपयोग अथवा अपव्यय करने वालों को क्या कहा जाए? बुद्धिमान व्यक्ति के लिए चिन्तन का प्रश्न है? कहीं हमारा आचरण अरबपति बाप के भिखारी बेटे जैसा तो नहीं, जो अपने पास अपार सम्पत्ति होते हुए भी अपने आपको भिखारी, गरीब, दरिद्र मान कर दर-दर स्वास्थ्य की भीख मांग रहा है? उसी प्रकार जिस शरीर में इतने अमूल्य उपकरण हो, उस शरीर में अपने आपको स्वस्थ रखने की व्यवस्था न हो, कैसे सम्भव है?

जरा चिन्तन करें, कहीं मानव जीवन रूपी दुनिया की सर्वश्रेष्ठ गाड़ी, हमारी स्वछन्द मनोवृत्तियों रूपी अनाड़ी ड्राइवर के हाथों में तो नहीं है? पेट्रोल की गाड़ी को केरोसिन से कब तक ढंग से चलाया जा सकता है। ठीक उसी प्रकार जीवन में सद्गुणों रूपी ऊर्जा के रूप में उपलब्ध सनातन सिद्धान्तों पर आधारित प्राकृतिक जीवन शैली रूपी पेट्रोल के स्थान पर दुर्गुणों और अप्राकृतिक जीवन जी-कर कैसे स्वस्थ रहा जा सकता है? चिन्तन का प्रश्न है।

स्वस्थ कौन?

स्वस्थ का अर्थ होता है, स्व में स्थित हो जाना। अर्थात् स्वयं पर स्वयं का नियंत्रण, अनुशासन अथवा पूर्ण स्वावलम्बन। अपने स्वभाव में रहना। अनुकूलता और प्रतिकूलता दोनों परिस्थितियों में समभाव बनाएं रखना, सन्तुलित रहना, राग और द्वेष से परे हो जाना। ऐसी अवस्था में शरीर निरोग, मन निर्मल, विचार पवित्र और आत्मा शुद्ध हो जाती है। स्व का मतलब आत्मा है। अतः आध्यात्मिक दृष्टि से आत्म स्वभाव में रहने वाला ही स्व में स्थित अर्थात् स्वस्थ होता है।

स्वास्थ्य हेतु शरीर, मन और आत्मा को एक इकाई मानना आवश्यक

आज हमने उपचार हेतु शरीर को कई टुकड़ों में बांट दिया है। जैसे एक अंग का दूसरे किसी अंग से सम्बन्ध ही न हो। आंख का डॉक्टर अलग, कान, नाक, गला, दांत, हृदय, फेंफड़ा, गुर्दा, मस्तिष्क आदि सभी के विशेषज्ञ अलग-अलग होते हैं। उपचार करते समय जब तक पूर्ण शरीर, मन और आत्मा को एक इकाई के रूप में स्वीकार न किया जायेगा, तब तक स्थायी प्रभावशाली उपचार एक कल्पना मात्र होगा।

आंख, कान अथवा शरीर का सूक्ष्म भाग अथवा इन्द्रियाँ मात्र भौतिक उपकरण ही नहीं, परन्तु उसके साथ जीवन्त चेतना, संवेदनाएँ और मन की स्मृति, कल्पनाएँ, अनुभूतियाँ आदि भी जुड़े हैं, उसके ज्ञान के बिना आंख और कान जैसे शरीर के किसी भी भाग की सूक्ष्मतम जानकारी मात्र भौतिक उपकरण की अर्थात् अधूरी ही होती है।

कर्मो से प्रभावित स्वास्थ्य-

जो जन्म लेता है, वह एक दिन अवश्य मरता है, परन्तु कौन, कब, कहाँ और कैसे मरेगा? आज का चिकित्सा विज्ञान अथवा अनुभवी चिकित्सक भी बतलाने में असमर्थ हैं। एक जैसी घटना का प्रभाव सभी पर एक जैसा क्यों नही पड़ता? एक व्यक्ति साधारण सी प्रतिकूलता, रोग आदि में विचलित हो जाता है, जबकि दूसरा विकटतम परिस्थितियों, असाध्य एवं संक्रामक रोगों अथवा कष्ट के समय भी विचलित क्यों नहीं होता? हमारा जीवन कर्म की सीमाओं से बँधा हुआ होता है। आत्मा पर लिप्त कर्मों के अनुसार ही प्राणि मात्र को वातावरण और परिस्थितियाँ मिलती है। शरीर, मन और भावों की स्थिति बनती है। जिसकी अभिव्यक्ति वाणी द्वारा और शरीर में अवयवों के परिवर्तन के रूप में होती है और अन्त में रोगों का कारण। कभी-कभी पुण्य के प्रभाव से यदि किसी व्यक्ति को सदैव अनुकूलता मिलने लगे,

जीवन में किसी प्रकार का वियोग न देखना पड़े, स्वास्थ्य सदैव अच्छा रहता हो, मन चाहा पद और प्रतिष्ठा तथा धन-दौलत विपुल मात्रा में मिलते रहें तो अज्ञानवश व्यक्ति अपने अहंकार के कारण कर्म सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करता। प्राप्त सभी उपलब्धियों का श्रेय मात्र अपने परिश्रम व पुरुषार्थ को ही समझने लगता है। उसमें स्वछन्द मनोवृति विकसित होने लगती है। अपनी सफलताओं का अहं करने वालों के जैसे ही पूर्व कृत शुभ कर्मों का क्षय हो जाता है और अशुभ कर्मो का उदय प्रारम्भ होने लगता है, उनका घमण्ड चूर-चूर हो जाता है। करोड़पति गरीब हो जाता है और नेताओं की नेतागिरी चली जाती है। अपराध के प्रथम प्रयास में न पकड़ा जाने वाला यदि अपनी सफलताओं पर गर्व करे और अपराध प्रवृत्ति की प्रंशसा करे तो यह उसके अज्ञान का ही सूचक समझना चाहिए।

आरोग्य एवं निरोगता में अन्तर-

निरोग का मतलब शरीर में रोग उत्पन्न ही न हो जबकि आरोग्य का मतलब शरीर में रोगों की उपस्थिति होते हुए भी हमें इनकी पीड़ा और दुष्प्रभावों का अनुभव न हो। आज हमारा सारा प्रयास प्रायः आरोग्य रहने तक ही सीमित हो गया है। आज हम मात्र शारीरिक रोगों को ही रोग मान रहे हैं। चेतनाशील प्राणी को ही रोग की अनुभूति होती है। मृत्यु के पश्चात् निर्जीव शरीर अथवा जड़ या अचेतन अवस्था में रोग की अनुभूति नहीं होती। आत्मा की अशुद्ध अवस्था अथवा विभाव दशा ही रोग का प्रतीक होती है। आत्मा के बिना न तो शरीर का अस्तित्व होता है, न मन व वाणी ही चेतना की अभिव्यक्ति के माध्यम होते हैं। अतः जब तक आत्मा अपनी शुद्धावस्था को प्राप्त नहीं होती, हम किसी न किसी रोग से अवश्य पीड़ित होते हैं, अर्थात् निरोग नहीं बन सकते।

रोग चाहे शारीरिक हो, चाहे मानसिक अथवा आत्मिक, उसका प्रभाव तो शरीर पर ही होगा। अभिव्यक्ति तो शरीर के माध्यम से ही होगी, क्योंकि आत्मा तो अरूपी है और मन को भी हम अपने चर्म चक्षुओं द्वारा देखने में असमर्थ हैं। मुख्य रूप से रोग आधि (मानसिक), व्याधि (शारीरिक), उपाधि (कर्म-जन्य) के रूप में ही प्रकट होते हैं। अतः आधि, व्याधि और उपाधि का शमन करने से ही समाधि, स्वस्थता एवं परम शान्ति अर्थात् निरोग अवस्था की प्राप्ति हो सकती है।

अच्छा स्वास्थ्य कैसा होता है ?

अच्छे स्वास्थ्य का मतलब है- रोग-मुक्त जीवन। स्वास्थ्य तो तन, मन और आत्मोत्साह के समन्वय का नाम है। अर्थात् शरीर, मन और आत्मा, तीनों जब ताल से ताल मिलाकर कार्य करें। शरीर की सारी प्रणालियाँ एवं सभी अवयव सामान्य रूप से स्वतंत्रता पूर्वक कार्य करें, किसी के भी कार्य में कोई अवरोध अथवा आलस्य न हो और न उनको चलाने के लिए किसी बाहरी विशेष वस्तु की आवश्यकता पड़े। शरीर का तंत्र अपनी क्षमताओं का पूर्ण उपयोग से कार्य करे, मन का चिन्तन और आचरण सम्यक् हो, अर्थात् मन में बैचेनी न हो, सारे अंग और क्रियाएँ सन्तुलित हो, असन्तुलित न हो। सारी प्रवृत्तियाँ सहज और स्वाभाविक हो, अस्वाभाविक न हो। नाड़ी, मज्जा, अस्थि, प्रजनन एवं लसिका आदि सभी तंत्र शक्तिशाली हो तथा अपना कार्य पूर्ण क्षमता से करने में सक्षम हो। वास्तव में पूर्ण स्वस्थता के मापदण्ड तो यही है। जितने-जितने अंशों में उपर्युक्त तथ्यों की प्राप्ति होगी उसी अनुपात में, सही स्वरूप में हम स्वस्थता के समीप होंगे, इसके विपरीत स्थिति पैदा होने पर अपने आपको षत-प्रतिषत स्वस्थ मानना अथवा स्वस्थ बनाने का दावा करना न्याय संगत नहीं।

अच्छे स्वास्थ्य का अर्थ है- विकारमुक्त अवस्था। रोग का तात्पर्य विकारयुक्त अवस्था यानी ''जितने ज्यादा विकार उतने ज्यादा रोग।'' जितने विकार कम उतना ही स्वास्थ्य अच्छा। विकार का मतलब अनुपयोगी, अनावश्यक, व्यर्थ विजातीय तत्त्व हैं। जब ये विकार शरीर में होते हैं तो शरीर रोगी बन जाता है। परन्तु जब ये विकार मन, भावों और आत्मा में होते हैं तो क्रमशः मन, भाव और आत्मा विकारी अथवा अस्वस्थ कहलाती है।

स्वास्थ्य का महत्त्व-

स्वस्थ रहना भी एक कला है, एक विज्ञान है, एक दृष्टि, सोच अथवा चिन्तन का प्रतिफल है जिसके लिए विवेकपूर्ण उचित ज्ञान, साधन और सम्यक् पुरुषार्थ अनिवार्य है। स्वास्थ्य जो तन, मन और आत्मा के एक सन्तुलित,

अनुशासित, समन्वय का प्रतीक है, कोई ऐसी वस्तु नहीं जिसे बाजार से खरीदा जा सके अथवा उधार लिया जा सके या चुराया जा सके। ये सारी बातें जानते, मानते और समझते हुए भी आज का मानव कितना स्वस्थ एवं सुखी हैं, प्रायः किसी से अज्ञात नहीं है। प्रत्येक मानव दीर्घायु बन आजीवन स्वस्थ रहना चाहता है, परन्तु चाहने मात्र से तो स्वास्थ्य प्राप्त नहीं हो जाता। यदि हमें स्वस्थ रहना है तो रोग पैदा करने वाले कारणों से अपने आपको दूर रखना होगा।

जिस प्रकार खेत में बीज बोने से पूर्व उसकी सफाई आवश्यक है। फूटे हुए घड़े को भरने से पहले छिद्र को बन्द करना जरूरी है। तालाब को खाली करने से पहले उसमें आते हुए पानी को रोकना आवश्यक है, ठीक उसी प्रकार उपचार से पूर्व रोग के कारणों से बचना आवश्यक है।

शक्ति बिना स्वास्थ्य नहीं-

स्वास्थ्य का आधार होता है ऊर्जा, शक्ति, ताकत, बल आदि। शक्ति और स्वास्थ्य को कभी अलग नहीं किया जा सकता। कमजोर आदमी कभी शान्ति का अनुभव नहीं कर सकता। यदि हमारा शरीर, मन और भावना के स्तर पर कमजोर है और हम शान्ति अथवा स्वस्थता की कामना करें तो वह कभी सम्भव नहीं हो सकता। जिसके ये तंत्र कमजोर हैं वह जरा-सी प्रतिकूलता में विचलित हो जाएगा।

स्वास्थ्य की पहली शर्त है-शक्ति का विकास। हम शक्तिशाली बनें, अपनी शक्ति का विकास करें। क्रम से चलें। पहले स्तर पर है-आत्मिक शक्ति का विकास। दूसरे स्तर पर है-मानसिक शक्ति का विकास और तीसरे स्तर पर है-शारीरिक शक्ति का विकास। शरीर में भी ज्ञान, नाड़ी आदि सभी तंत्र भी मजबूत होने चाहिए। शारीरिक शक्ति का मतलब शारीरिक सौष्ठव नहीं है। बहुत वजन उठा लेना या कुश्ती में जीतना ही शक्ति नहीं है। शारीरिक शक्ति के विकास का अर्थ नाड़ी, ग्रन्थि, ज्ञान तंत्र, मस्तिष्क, मेरूदण्ड आदि का मजबूत होना होता है। यह सभी शक्तियाँ जिसमें विकसित होती है, उसे शक्तिशाली कहते हैं। आत्मिक विकास, मनोबल का विकास और शारीरिक विकास, इन तीनों का समन्वय ही स्वस्थता का आधार होता है। युद्ध में हजारों योद्धाओं को जीतने वाला वीर अपने इन्द्रियों और मन के विकारों से क्यों परास्त हो जाता हैं? परन्तु हम जितनी चिन्ता शरीर की करते हैं, उतनी जो देखने वाली, जानने वाली, समझने वाली, उसको चलाने वाली आत्मा की प्रायः नहीं करते।

रोग क्या है ?

रोग का मतलब शरीर में विकारों, दोषों, विजातीय अथवा अनुपयोगी तत्त्वों का जमा होकर, शरीर के विभिन्न तन्त्रों के स्वचालित, स्वनियंत्रित कार्यों में अवरोध अथवा असन्तुलन उत्पन्न करना है। वास्तव में प्राकृतिक सनातन नियमों का जाने-अनजाने वर्तमान अथवा भूतकाल में उल्लंघन करना अर्थात् असंयमित, अनियंत्रित, अविवेकपूर्ण स्वछन्द आचरण के द्वारा जो शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक क्षमताओं का अपव्यय, दुरुपयोग करने से, जो विकार उत्पन्न हो, असंतुलन की जो स्थिति बनती है, वही रोग है। ऐसी परिस्थिति में शरीर एवं मन की सभी क्रियाएँ, अंग, उपांग, इन्द्रियां, तंत्र, अवयव आदि अपना-अपना कार्य स्वतंत्रता पूर्वक सामान्य रूप से नहीं कर पाते। फलतः शरीर, मन और आत्मा के अवांछित, विजातीय, अनुपयोगी विकारों का विसर्जन बराबर नहीं होता। उनमें अवरोध उत्पन्न होने से पीड़ा, दर्द, वेदना, जलन, सूजन, विघटन, चेतना की शून्यता, तनाव, बैचेनी, भय, चिन्ता, अधीरता, असजगता, गलत दृष्टिकोण व चिन्तन, जीवन के प्रति निराशा आदि के जो लक्षण प्रकट होते हैं, वही मिलकर रोग कहलाते हैं।

रोग का प्रारम्भ आत्म विकारों से-

शरीर, मन और आत्मा का एक-दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध है तथा सभी एक-दूसरे से प्रभावित होते हैं। मन, वचन और काया आत्मा की अभिव्यक्ति के तीन सशक्त माध्यम हैं। मन दूषित होने से वाणी और काया बिगड़ जाती है अर्थात स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। यदि शरीर बिगड़ा हुआ हो तो मनोवृत्तियाँ दूषित हो जाती है। अतः शरीर, मन और वाणी का तालमेल, सन्तुलन ही वास्तविक स्वास्थ्य है।

स्वास्थ्य के प्रति हमारा अज्ञान अथवा अधूरा ज्ञान रोगों का मूल कारण है। रोग की चार अवस्थाएँ हैं। शारीरिक, मानसिक, भावात्मक और आत्मिक। जिस अवस्था का रोग हो, जब तक उसके अनुरूप उपचार नहीं किया जाएगा तब तक रोग से मुक्ति सम्भव नहीं।

शरीर से मन और मन से भावना की शक्ति बहुत ज्यादा होती है और भावना से आत्मा की शक्ति अनन्त गुणा ज्यादा होती है। जब ऐसे व्यक्ति जिन्हें चलने-फिरने में भी अत्यधिक कष्ट होता है, परन्तु सामने मृत्यु का प्रसंग या भय जैसी परिस्थिति उत्पन्न होने पर दौड़ने लग जाते हैं। शारीरिक वेदना से तड़पने वाले मृत्यु की शय्या पर अन्तिम श्वास गिनने वालों के सामने, जब लम्बे समय पश्चात् उनका कोई स्नेही परिजन मिलता है, तो क्षण मात्र के लिए सारे दुःख-दर्द कैसे भूल जाते हैं?खुशी के प्रसंगों पर रोगों को क्यों भूल जाते हैं? आत्म साधक सभी भौतिक सुख-सुविधाओं को त्यागने वाले आत्म बली, आध्यात्म योगी, सन्त, मुनिजन इतने तनावमुक्त, प्रसन्नचित्त, शान्त, निर्भय, सुखी, सन्तोषी कैसे रहते हैं?

मनुष्य का शरीर अनन्त गुणधर्मी होता हैं। अतः हमें अनेकान्त दृष्टिकोण से उसको समझना होगा तथा रोग उत्पन्न करने वाले कारणों से बचना होगा। शक्ति की सबसे गहरी और प्रथम परत आत्मा पर होती है। पूर्वार्जित कर्मो के अनुसार ही इस जन्म में हमें प्रिय-अप्रिय, संयोग-वियोग, अनुकूल-प्रतिकूल, सुख-दुःख, शारीरिक स्थिति, चेतना का विकास, उच्च या नीच गोत्र, पीड़ाकारी अथवा रोग मुक्त, जीवन, सम्यक् या मिथ्या दृष्टि, सम्यक् ज्ञान या मिथ्या ज्ञान, वीतरागता अथवा आसक्ति, आयुष्य, बल, वीर्य, शारीरिक सहनन मिलते हैं। हमारी आत्मा अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन एवं अनन्त सुख से परिपूर्ण होती हैं, परन्तु कर्मो से आच्छादित होने के कारण उसका सही रूप प्रकट नहीं हो पाता। ज्ञानावरणीय कर्म के अनुसार हमारी प्रज्ञा होती है। दर्शनावरणीय कर्म के प्रभाव से हमें सोचने, समझने, विश्वास करने व चिन्तन की सही अथवा गलत दृष्टि मिलती हैं। वेदनीय कर्मो के अनुसार हमें साता-असाता, रोग-निरोग, सुख-दुःख की प्राप्ति होती हैं। आयुष्य कर्मो के आधार पर हमें आयुष्य मिलती है। मोहनीय कर्म राग द्वेष एवं आसक्ति अथवा अनासक्ति के भाव पैदा करता है। गोत्र कर्म के अनुसार हमें उच्च अथवा नीच कुल, जाति, परिवार, आसपास का वातावरण मिलता है। नाम कर्म के अनुरूप हमें शरीर का आकार एवं शक्ति प्राप्त होती है। शरीर का रंग, रूप, बनावट तथा शरीर, मन और इन्द्रियों की क्षमताएँ मिलती हैं। अन्तराय कर्मो का उदय विकास व सुखद उपलब्धियों में अवरोध उत्पन्न करता हैं। जिसके परिणाम स्वरूप सभी अनुकूलताएँ होते हुए भी इच्छित लक्ष्य-प्राप्ति में कुछ न कुछ बाधा उपस्थित हो जाती हैं।

कर्मो की इन विसंगतियों का प्रभाव हम अपने आसपास के वातावरण में स्पष्ट अनुभव करते हैं। आत्मा पर आये इन कर्मो के आवरणों को मनुष्य जीवन में सम्यक् पुरुषार्थ द्वारा दूर किया जा सकता हैं। सारे कर्मो का क्षय होने से मनुष्य नर से नारायण, आत्मा से परमात्मा, भक्त से भगवान के रूप में सर्वज्ञ, सर्वदर्शी एवं अनन्त सुखी बन जाता है, अपने स्वभाव में स्थित हो जाता है। यही वास्तव में सम्पूर्ण स्वस्थता की अवस्था होती है। यही मानव जीवन का परम लक्ष्य होता है। जो आत्मोत्थान में जितना-जितना विकसित होता है, उतना-उतना ही आत्मबली बनता जाता है। रोगों की जड़ समाप्त होने लगती हैं, उपचार की आवश्यकताएं कम होती जाती हैं। आत्मा के विकार आत्मज्ञानी के मार्ग-निर्देशन में व्यक्ति के सम्यक् पुरुषार्थ एवं सम्यक् आचरण से ही दूर किये जा सकते हैं। अतः हमें स्वस्थ रहने के लिये आत्मा में विकार बढ़ाने वाली हिंसा, क्रूरता, अशांति, तनाव आदि अमानवीय पापकारी प्रवृत्तियों से बचना चाहियें।

शरीर की विभाव अवस्था रोग है-

जैसे अग्नि के सम्पर्क से पानी उबलने लगता है, परन्तु जैसे ही पानी को अग्नि से अलग करते है, धीरे-धीरे वह स्वतः ही ठंडा हो जाता है। शीतलता पानी का स्वभाव है, गर्मी नहीं। पानी को वातावरण के अनुरूप रखने के लिए किसी बाह्य आलम्बन की आवश्यकता नहीं होती। उसी प्रकार शरीर में हड्डियों का स्वभाव कठोरता होता है परन्तु किसी कारणवश कोई हड्डी नरम हो जाए उसमें लचीलापन आ जाए तो रोग का कारण बन जाती है। मांस-पेशियों का स्वभाव लचीलापन है, परन्तु उसमें किसी कारणवश कठोरता आ जाए, गांठ हो जाए अथवा विजातीय तत्वों के जमाव के कारण अथवा आवश्यक रसायनों के अभाव के कारण यदि शरीर के किसी भाग की मांसपेशियों में लचीलापन समाप्त हो जाए अथवा क्षमतानुसार न हों तो रोग कारण बन जाती है। शरीर का तापक्रम 98.4 डिग्री फारेनहाइट रहना चाहिए, परन्तु किसी कारणवश कम या ज्यादा हो जाए तो शरीर में रोग के लक्षण प्रकट हो जाते हैं। रक्त सारे शरीर में आवश्यकतानुसार ऊर्जा पहुँचाने का कार्य अबाध गति से करता है। अतः उसके सन्तुलित प्रवाह हेतु आवश्यक गर्मी एवं

निश्चित् दबाव आवश्यक होता है, परन्तु यदि हमारी अप्राकृतिक जीवन शैली से रक्त का बराबर निर्माण न हो अथवा दबाव आवश्यकता से कम या ज्यादा हो जाए तो सारे शरीर में प्राण ऊर्जा का वितरण प्रभावित हो जाता है। रक्त नलिकाओं के फैलने अथवा सिकुड़ने की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं अर्थात् अपना स्वरूप बदल देती हैं अतः रोग की स्थिति पैदा हो जाती है।

रोग हमारा मित्र-

प्रकृति रोग के द्वारा यह दर्शाती है कि हम गलती कर रहे हैं। प्रारम्भिक अवस्था में प्रकट होने वाले रोग के लक्षण हमारे मित्र होते हैं। हमें हमारी असजगता के कारण भविष्य में होने वाले दुष्परिणामों की चेतावनी देकर सचेत करते हैं। यह तो हमारे शारीरिक प्रक्रिया का एक उपकारी एवं हितैषी कार्य है जिसमें हमें सहयोग करना चाहिए। यह कोई शत्रुता पूर्ण कार्य नहीं जिसे रोका जाए, विरोध किया जाए अथवा जिसे नष्ट किया जाए। परन्तु अज्ञानवश आज हम इन संकेतों को दुश्मन मान दवाइयों द्वारा उनको दबा कर अपने आपको बुद्धिमान समझने की भूल कर रहे हैं। कचरे को दबाकर अथवा छिपाकर रखने से उसमें अधिक सड़ांध, बदबू अथवा अवरोध की समस्या पैदा होगी। दीमक लगी लकड़ी पर रंग-रोगन करने से बाहरी चमक भले ही आ जावे, परन्तु मजबूती नहीं आ सकती। औषधियों के माध्यम से इस सफाई अभियान को रोकने से तो विषैले अथवा दूषित तत्त्वों के शरीर के अन्दर रुके रहने से धीरे-धीरे शरीर की कार्य प्रणाली में अवरोध बढ़ता जाएगा, जो भविष्य में विभिन्न गम्भीर रोगों को जन्म देने का कारण बनते हैं।

रोग असजगता की चेतावनी-

रोग प्रकृति द्वारा हमारी गलतियों को दर्शाता है। कारण दूर किए बिना लक्षणों को दबाने से राहत भले ही मिल जाए, पूर्ण उपचार कदापि नहीं हो सकता। अतः वास्तव में रोग तो एक उपहार है, क्योंकि इसका उद्देश्य परोपकारी व रक्षाकारी है। शरीर में अवांछित तत्त्वों का जमाव व उसके निष्कासन में निष्क्रियता ही रोगों का मूल कारण है।

आधुनिक चिकित्सा प्रायः रोग के मूल कारणों का पता न लगाकर, रोग के लक्षणों का उपचार कर, तुरन्त राहत दिलाने का प्रयास करती है। दवाओं द्वारा लक्षणों को दबा देते हैं। जिससे एक तरफ तो रोग के कारण प्रायः बने रहते हैं, दूसरी तरफ दवाएँ प्रायः शरीर की रोग प्रतिकारात्मक क्षमताओं को क्षीण कर देती है। परिणामस्वरूप भविष्य में नित्य नवीन रोगों के पनपने की सम्भावना बनी रहती है। उनका प्रयास वृक्ष को सुरक्षित रखने के लिए, जड़ को सींचने के बजाय पत्तों को पानी पिलाने के समान अदूरदर्शिता पूर्ण होता है।

रोग क्यों होते हैं ?

रोग होने के अनेक कारण हो सकते हैं। जैसे पूर्व जन्म के संचित असाता वेदनीय कर्मो का उदय, पैतृक संस्कार अथवा वंशानुगत रोग, आकस्मिक दुर्घटनाएँ, आसपास का बाह्य प्रदूषित वातावरण, मौसम का परिवर्तन एवं उसके प्रतिकूल आचरण, असंयम, दुर्व्यसनों का सेवन, अकरणीय पाशविक वृत्तियाँ, मिलावट एवं रासायनिक खाद एवं कीटनाशक दवाइयों से उपलब्ध आहार सामग्री, भ्रामक विज्ञापनों पर आधारित जीवन पद्धति, असाध्य अथवा संक्रामक रोगों के प्रति प्रारम्भ में रखी गई उपेक्षावृत्ति, अनावश्यक दवाओं का सेवन तथा शारीरिक परीक्षण, इलैक्ट्रोनिक किरणों (एक्स रे, टी.वी., सोनोग्राफी, कम्प्यूटर, सिटी-स्केनिंग, एम.आर.आई., मोबाइल फोनों एवं अन्य प्रकार की आणविक तरंगों) का दुष्प्रभाव, प्राण ऊर्जा का दुरुपयोग तथा आवश्यकता के अनुरूप आराम, विश्राम, निद्रा का अभाव, शरीर में रोग प्रतिकारात्मक और रोग निरोधक क्षमता का क्षीण होना, दवाओं एवं गलत अथवा अधूरे उपचार का दुष्प्रभाव, वृद्धावस्था, इन्द्रियों और मन का असंयम जो शरीर में विकार पैदा करे, आलस्य, अविवेक, अशुभ चिन्तन, आवेग, तनाव, अज्ञान, जीवन मूल्यों एवं सही लक्ष्य चयन और प्राप्ति हेतु असजगता, ध्यान और स्वाध्याय की उपेक्षा, राग, द्वेष और हिंसा को प्रोत्साहित करने वाली कषाय मूलक प्रवृत्तियाँ आदि की बहुलता रोगों का मुख्य कारण होती है।

जितने ज्यादा उपर्युक्त कारण विद्यमान होंगे, उतने शरीर में विजातीय तत्त्व अधिक बनेंगे तथा पूर्ण रूप से पेशाब, मल, पसीना, बलगम द्वारा बाहर नहीं निकल पाएँगे और शरीर में एकत्रित होने लगेंगे। जिस भाग में विजातीय तत्त्व एकत्रित होंगे, उस अंग की कार्यप्रणाली खराब हो जाती है और उससे सम्बन्धित रोग हो जाते हैं। रोगों के नाम भले

ही भिन्न-भिन्न हों, परन्तु कारण शरीर में विजातीय तत्त्वों का जमाव ही होता है। जितने ज्यादा शरीर में अनावश्यक, अनुपयोगी तत्त्व होंगे उतना ही व्यक्ति अशान्त, परेशान, तनावग्रस्त, दुःखी एवं रोगग्रस्त होगा और जितना-जितना इन कारणों से बचता जाएगा उतना-उतना व्यक्ति स्वस्थ एवं निरोगी होगा।

स्वास्थ्य एवं रोग जीवन की दो अवस्थाएँ हैं। जीवन में प्रतिक्षण निर्माण और क्षय का क्रम चलता है। जब तक दोनों में सन्तुलन रहता है, तब तक हम स्वस्थ रहते हैं परन्तु जब कोशिकाओं के निर्माण की प्रक्रिया उनके क्षय होने से धीमी हो जाती है तो शरीर में कमजोरी एवं रोग उत्पन्न होने की स्थिति बनती है। पहले रोग की प्रतिकारात्मक क्षमता घटने लगती है और बाद में रोग के लक्षण प्रकट होने लगते हैं।

इन कारणों के परिणामस्वरूप शरीर में चेतना का असन्तुलन हो जाता है। कहीं सक्रियता आवश्यकता से अधिक हो जाती है तो कुछ भाग चेतना की असक्रियता के कारण आंशिक अथवा पूर्णरूपेण निष्क्रिय होकर अपना कार्य बराबर नहीं करते तथा व्यक्ति रोगी हो जाता है। यदि किसी भी विधि द्वारा इस असंतुलित चेतना को पुनः संतुलित कर दिया जाए तो सारे शरीर में चेतना का प्रवाह सन्तुलित होने लगता है और व्यक्ति रोगमुक्त होने लगता है।

आज चन्द मानव भौतिक सुखों की तलाश में दुर्व्यसनों के दुष्प्रभावों को जानते हुए भी निःसंकोच सेवन करते हैं। पानी की भाँति शराब अथवा अपेय का सेवन करते हैं। बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू, अफीम, हुक्का, गुटखा, हेरोइन, स्मैक आदि हानिकारक दुर्व्यसनों का सेवन करते हैं। अपनी कामेच्छा से खुला-खेल अमूल्य वीर्य शक्ति का नाश करते हैं। उपचार द्वारा अपने आपको स्वस्थ रखने की कामना रखने वाले ऐसे मानव को स्वयं के प्रति भी सजग एवं सतर्क कैसे माना जाए? ये सभी प्रवृत्तियाँ तो रोग पैदा करने और उन्हें बढ़ाने वाली है। अतः ये रोग का कारण होती हैं।

वंशानुगत रोगों में माता-पिता की भूमिका-

कोई भी रोग बाजार में नहीं मिलता। पूर्वार्जित कर्मो, आकस्मिक दुर्घटनाओं अथवा जन्मजात और वंशानुगत रोगों को छोड़ प्रायः अन्य सभी रोगों के लिए बाल्यकाल के पश्चात् रोगी स्वयं ही जिम्मेदार होता है। बाल्यकाल ओर गर्भावस्था में तो जीवन माता के आश्रित होता है। हमारे शरीर के सभी अंगों, उपांगों अन्तःश्रावी ग्रन्थियों, इन्द्रियों आदि का 99 प्रतिशत निर्माण तो बीज रूप में गर्भावस्था में ही हो जाता है। जन्म के पश्चात् तो उसमें मात्र विकास अथवा फैलाव ही होता है। अच्छे फल की प्राप्ति के लिए बीज का अच्छा होना अनिवार्य है। अतः बच्चे के स्वास्थ्य हेतु विशेष रूप से माता ही जिम्मेदार होती है। वंशानुगत और जन्मजात रोगों में माता-पिता द्वारा गर्भकाल में रखी गई असावधानियाँ, असंयम, अविवेक एवं उपेक्षावृत्ति ही मूल कारण होते हैं। खेती करने वाला साधारण किसान भी अच्छी फसल प्राप्त करने के लिए बीज बोने से लेकर फसल प्राप्त होने तक कितनी सजगता, सावधानी और देखरेख करता है, पुरुषार्थ करता है, तो ही उसे अपने परिश्रम का उचित फल मिलता है। तब मनुष्य जैसे व्यक्तित्व के निर्माण के प्रति माता-पिता असजग, बेखबर लापरवाह रहें, अविवेकपूर्ण आचरण करें तो वे अपने कर्त्तव्यों के प्रति ईमानदार नहीं कहे जा सकते? उसका दुष्परिणाम होता है। अशक्त, कमजोर, दुर्बल, रोगग्रस्त, विकलांग सन्तान।

मन का असंयम रोग का जनक-

मन का कार्य चिन्तन-मनन, संकल्प-विकल्प, इच्छाएँ-कामनाएँ करना, भूत की स्मृति एवं भविष्य की कल्पनाएँ करना आदि है। इस पर जब ज्ञान और विवेक का अंकुश रहता है तो मन शुभ में प्रवृत्ति करता है। व्यक्ति को नर से नारायण बना देता है, परन्तु जब वही मन स्वछन्द बन जाता है, तब व्यक्ति को अपने लक्ष्य से विचलित कर देता है। जब चाहा, जैसा चाहा, चिन्तन, मनन, इच्छा, एषणा, आवेग करने लग जाता है, जिसका परिणाम होता है गलत प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन, असंयम, कषाय (आत्मा को कलुषित करने वाली प्रवृत्ति) प्रमाद (निरर्थक समय की बरबादी), अशुभ, अनावश्यक, अनुपयोगी कार्यो में मन और काया को लगाए रखना। ये सब प्रवृत्तियाँ आत्मा को विकारी बना देती है। आत्मा से मन, वाणी और शरीर का सृजन होता है। अतः तीनों में विकार उत्पन्न होने से व्यक्ति रोगग्रस्त हो जाता है।

रोग में मन की भूमिका-

मन का जितना विकसित स्वरूप मानव जीवन में प्राप्त होता है उतना अन्य किसी प्राणी में नहीं मिलता। मनन से मन, चिन्तन, कृति, विकृति, संकल्प, इच्छाओं, ऐषणाओं, भावनाओं का नियन्त्रण होता है। मन बड़ा चंचल होता है। उसकी स्वछन्द एवं अनियन्त्रित गतिविधियाँ अधिकांश रोगों की उत्पत्ति में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। मन को संयमित, नियन्त्रित, अनुशासित रखने से अनेक रोगों से सहज ही बच जाते हैं। आज हम जितना खयाल शारीरिक स्वच्छता, शुद्धता का रखते हैं, बाह्य पर्यावरण एवं प्रदूषण की चिन्ता करते हैं, क्या उतनी चिन्ता मन में उठने वाले क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कषाय तथा घृणा, हिंसा, क्रूरता, तिरस्कार, वासना, ईर्ष्या, द्वेष, निन्दा आदि बुरे विचारों के प्रदूषण की करते हैं ?इन आवेगों से ही रोग बढ़ते हैं। इसी कारण एक जैसे रोग की स्थिति में एक व्यक्ति बहुत परेशान एवं बेचैन रहता है। हाय-हाय करता है जबकि दूसरा तनिक भी विचलित नहीं होता। स्वस्थ चिन्तन, मनन, स्वाध्याय, सकारात्मक सोच, सत्संगति, ध्यान एवं कायोत्सर्ग द्वारा मन को अशुभ से शुभ, अनुपयोगी से उपयोगी प्रवृत्तियों में लगाया जा सकता है, जो स्वस्थ जीवन के लिये अति आवश्यक होता है।

क्या स्वास्थ्य हेतु प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष हिंसा उचित है ?

किसी प्राणी को दुःख दिये बिना हिंसा, क्रूरता, निर्दयता हो नहीं सकती। पशु भले ही बेजुबान हो, बेजान नहीं होते। जो प्राण हम दे नहीं सकते, उसको लेने का हमें क्या अधिकार ? दुःख देने से दुःख ही मिलेगा। प्रकृति के न्याय में देर हो सकती है, अंधेर नहीं। जो हम नहीं बना सकते, उसको स्वार्थवश नष्ट करना बुद्धिमता नहीं। अतः अन्य प्रभावशाली अहिंसक चिकित्सा पद्धतियों का विकल्प होते हुए भी चिकित्सा के नाम पर प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से हिंसा करना, कराना और करने वालों को सहयोग देना अपराध है। जिसका परिणाम हिंसा में प्रत्यक्ष-परोक्ष सहयोग देने वालों को भविष्य में दुःखी बन भुगतना पड़ेगा। यदि किसी का आशीर्वाद हमारा भला कर सकता है तो हिंसक अवयवों से निर्मित दवाइयों के माध्यम से शरीर में जाने वाले उन बेजुबान प्राणियों की बद्-दुआओं की तरंगे, हिंसा में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग करने वालों के शरीर को दुष्प्रभावों से ग्रसित करे तो आश्चर्य नहीं। आधुनिक स्वास्थ्य विज्ञान की जानकारी हेतु करोड़ों जानवरों का प्रतिदिन विच्छेदन किया जाता है। दवाइयों के निर्माण और उनके परीक्षण हेतु जीव-जन्तुओं को निर्दयता, क्रूरतापूर्वक यातना दी जाती है। किसी को दुःख देकर सुख और शांति कैसे मिल सकती है ? यह तो पशुता एवं अनैतिकता का लक्षण है। जैसा करेंगे वैसा फल मिलेगा, यह कर्म का सनातन सिद्धान्त है। चिकित्सा के नाम पर प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से हिंसा करना, कराना और करने वालों को सहयोग देना अपराध है। अतः चिकित्सा हेतु प्रत्यक्ष या परोक्ष हिंसा, कर्जा चुकाने हेतु ऊँचे ब्याज पर कर्जा लेने के समान नासमझी होती है।

स्वास्थ्य हेतु भगवान महावीर का चिन्तन पूर्णतः वैज्ञानिक-

महावीर का दर्शन मौलिक रूप से स्वास्थ्य और चिकित्सा का दर्शन नहीं है, वह तो आत्मा से आत्मा का दर्शन है। परन्तु जब तक आत्मा मोक्ष को प्राप्त नहीं हो जाती तब तक, आत्मा शरीर के बिना रह नहीं सकती। शरीर की उपेक्षा कर आत्म-शुद्धि हेतु साधना भी नहीं की जा सकती। महावीर की दृष्टि में शरीर का आत्म-साधना हेतु महत्त्व होता है, इन्द्रियों के विषय भोगों के लिए नहीं। उनका अधिकांश चिन्तन आत्मा को केन्द्र में रख कर हुआ, परन्तु उन्होंने शरीर के निर्वाह हेतु केवल ज्ञान के आलोक में, जिस सम्यक् जीवन शैली का कथन किया, वह स्वतः मानव जाति के स्वास्थ्य का मौलिक शास्त्र बन गया।

भगवान महावीर के अनुसार जीवन एवं स्वास्थ्य की सभी समस्याओं का मूलाधार कर्म होता है। कर्मो के प्रभाव से ज्ञान-अज्ञान हो जाता है, दर्शन मिथ्या हो जाता है। अतः जब तक आत्मा पर कर्मो का आवरण रहता है, तब तक सम्पूर्ण स्वास्थ्य की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। न मालूम कब वे कर्म उदय में आकर व्यक्ति को रोगी बना दे, कहा नहीं जा सकता।

जो चिकित्सा पद्धतियाँ अशुभ कर्म बन्धन में सहयोगी होती है, महावीर ने उनका पूर्ण निषेध किया। रोग का मूल कारण अप्राकृतिक जीवन शैली, अनियन्त्रित, स्वछन्द, असयंमित-मन, वचन, काया की प्रवृत्तियाँ ही होती है। अतः महावीर ने प्राकृतिक स्वावलम्बी जीवन शैली और मन, वचन और काया के संयम को सर्वोच्य प्राथमिकता दी।

जितनी ईमानदारी से उनका पालन किया जाता है, उतना ही व्यक्ति स्वस्थ होता है तथा पूर्व संचित असातावेदनीय कर्म के कारण रोग की स्थिति बन भी जाती है तो भी वह परेशान नहीं होता। वह शरीर को आत्मा से अलग, नष्ट और विध्वंसन होने वाला मानता है। अतः उसकी प्राथमिकता शरीर पर नहीं रहती। शरीर से ध्यान हटाते ही शरीर के दर्द, पीड़ा आदि कष्ट नहीं पहुँचा सकते। जहाँ रोग का आदर सत्कार नहीं होता, वहाँ रोग अधिक दिनों का मेहमान नहीं रह सकता। सभी रोगों का कारण पर्याप्तियों के असंयम से होने वाले प्राणों का असंतुलन ही होता है। पर्याप्तियों के संयम से शरीर में रोग उत्पन्न होने की संभावनाएँ काफी कम हो जाती है और यदि रोग की स्थिति हो भी जाती है तो पर्याप्तियों, के संयम से पुनः शीघ्र स्वास्थ्य को प्राप्त किया जा सकता है। यही महावीर के सिद्धान्तानुसार शरीर स्वास्थ्य का मूलाधार है।

शरीर एवं रोगों की अपेक्षा रोग के मूल कारणों को दूर करने पर उन्होंने जो जोर दिया वह आधुनिक स्वास्थ्य विज्ञान के लिये चिन्तनीय है। अतः उनके दर्शन पर जितनी अधिक शोध की जायेगी उतने-उतने स्वास्थ्य के प्रति नये आयाम सामने आते जायेंगे। महावीर का दर्शन अपने आप में परिपूर्ण है। अतःउसकी उपेक्षा करने वाला आधुनिक स्वास्थ्य विज्ञान अपने आपको पूर्ण वैज्ञानिक मानने का दावा नहीं कर सकता।

अच्छे स्वास्थ्य हेतु रोग प्रतिरोधक क्षमता आवश्यक-

मानव अनन्त शक्तिशाली प्राणी है। उसमें अनन्त क्षमता और ऊर्जा होती है। जिस प्रकार लाखों चूहे मिलकर किसी शेर को परेशान नहीं कर सकते, उसी प्रकार यदि शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता अच्छी हो तो वायरस और कीटाणु उसका क्या बिगाड़ सकते हैं? यदि शेर को अपनी क्षमता पर विश्वास न हों, वह प्रमाद अथवा आलसी हो या गहरी निद्रा में असजगता से सोया हुआ हों तो निश्चित रूप से चूहे उसको परेशान कर सकते हैं। जागृत अवस्था में वे उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। शरीर की प्रतिकारात्मक शक्ति रोगों से हमारी रक्षा करती है। वह शक्ति क्यों क्षीण होती है? उसको क्षीण करने में गर्भावस्था से ही ली जाने वाली आधुनिक दवाइयों, इंजेक्शनों और टीकाकरण से पड़ने वाले दुष्प्रभावों की अहम् भूमिका होती है। जिनकी प्रतिरोधक क्षमता अच्छी होती है, उसका वायरस और बैक्टीरिया क्या कुछ बिगाड़ सकते हैं? अर्थात् वायरस उस व्यक्ति को रोगी नहीं बना सकता।

स्वास्थ्य का मूलाधार : अन्तःश्रावी ग्रन्थियों का संतुलन-

हम क्या है, और क्यों हैं? हमारे स्वभाव, प्रवृत्तियों, क्रियाओं एवं प्रतिक्रियाओं का संचालन और नियन्त्रण व समयबद्ध विकास क्यों और कैसे होता है? निश्चित अवधि के पश्चात् अंगों के विकास एवं वृद्धि में क्यों स्थिरता आ जाती है? कुछ व्यक्ति क्रोधी, क्रूर, हिंसक, अशान्त, चिड़चिड़े, हताश, भयभीत, असंवेदनशील, निराशावादी होते हैं तो बहुत से व्यक्ति स्वभाव से शान्त, प्रसन्न, हंसमुख आशावादी, संवेदनशील, करुणाशील, निडर, निर्भय, आत्मविश्वासी होते हैं? एक ही अध्यापक से शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों में कोई मंदबुद्धि वाला तो कोई प्रखर पंडित, विद्वान्, ज्ञानी कैसे बन जाते हैं? एक ही परिस्थिति में कार्य करने वाले सभी व्यक्तियों में नेतृत्व की क्षमता एकसी क्यों नहीं होती है? कोई साधारण खुराक खाने के बावजूद मोटा एवं तगड़ा होता है तो बहुत से व्यक्ति खाने पीने में पूर्ण विवेक रखने तथा अच्छी खुराक लेने के बावजूद अपेक्षाकृत दुबले-पतले ही क्यों रह जाते हैं? कभी-कभी कुछ व्यक्ति बहुत बोने तो चन्द व्यक्ति अत्याधिक लम्बे क्यों हो जाते हैं? ऐसे सैकड़ों प्रश्नों का समाधान ग्रंथियों की कार्य प्रणाली एवं नियन्त्रण की क्षमता को जानने से हो जाता है। ग्रंथियों के बराबर कार्य न करने से 75 से 90 प्रतिशत रोगों के पनपने की सभावना रहती हैं। दवाईयों के अनावश्यक अथवा अत्यधिक सेवन करने से ग्रन्थियाँ निष्क्रिय हो जाती है, जिससे शरीर की रोग प्रतीकारात्मक शक्ति घटने लगती हैं। एक्युप्रेशर पद्धति द्वारा अन्तःस्रावी ग्रंथियों के प्रतिवेदन बिन्दुओं पर दबाव देकर उन्हें सक्रिय, संतुलित एवं सजग सरलता पूर्वक किया जा सकता है। जन साधारण जितना-जितना इन ग्रंथियों के प्रति सजग होगा, उतनी उतनी उनकी प्रतिकारात्मक शक्ति बढ़ेगी। चारित्रिक गुणों का विकास होगा, तनाव घटेगा, विवेकशील बनेगा, उसमें सद् चिन्तन की प्रवृत्ति बढ़ेगी, आशावादी दृष्टिकोण पैदा होगा, साहस बढ़ेगा, चिन्तायें मिटेगी, व्यक्तित्व का विकास होने से प्रतिकूल परिस्थितियों में भी प्रसन्न एवं स्वस्थ रहकर सच्चे अर्थों में स्वाधीन बनेगा एवं अपने आपको चिकित्सकों से दूर रख सकेगा।

स्वास्थ्य मंत्रालय से अपेक्षा

स्वास्थ्य मंत्रालय से अपेक्षा है कि विज्ञापन तथा मनोरंजन के नाम पर स्वास्थ्य मंत्रालय द्वारा बेहिचक जो दृश्य टी.वी. पर दिखाये जाते हैं, जिनसे उठने वाले आवेग जनता की ग्रन्थियों को खराब कर रहे हैं। उन पर रोक लगावे, इससे होने वाले दुष्प्रभावों का पता भी लगायें, अवरोधक टीकों का प्रचार बंद करें अन्यथा जन साधारण के साथ बहुत बड़ा विश्वासघात होगा। उन कारणों के मूल में जाएं जिसके फलस्वरूप डॉक्टरों एवं अस्पतालों के निरन्तर बढ़ने के बावजूद जनता का स्वास्थ्य निरन्तर क्यों गिरता जा रहा है? रोगियों की संख्या में तीव्र गति से वृद्धि हो रही है? आज हमारी प्रतिकारात्मक शक्ति क्यों कम हो रही है? सहनशक्ति क्यों क्षीण हो रही है? आत्म-विश्वास और मनोबल क्यों कमजोर हो रहा है। साधारण सी प्रतिकूल परिस्थितियों में हम क्यों भयभीत हो जाते हैं? अन्याय अत्याचार के विरुद्ध अभिव्यक्ति की मानसिकता क्यों क्षीण हो गयी है? दवाईयों के कहीं दुष्प्रभाव तो नहीं पड़ रहे हैं? नये-नये रोग क्यों पनप रहे हैं?

-: चोरडिया प्रकाशन की पुस्तकें :- (लेखक - डॉ. चंचलमल चोरडिया)

क्र.सं.	विवरण	सहयोग राशि
1.	आरोग्य आपका	260 रु.
2.	स्वस्थ रहें या रोगी फैसला आपका?	40 रु.
3.	शरीर स्वयं का चिकित्सक	15 रु.
4.	जीवन है अनमोल (भजन संकलन)	20 रु.
5.	मांसाहार कितना उचित ?	10 रु.
6.	स्वास्थ्य हेतु सम्यक् चिन्तन आवश्यक।	10 रु.
7.	नाड़ी तंत्र एवं मांसपेशियों का उपचार	15 रु.
8.	**Resetting of Disturbed LEG, SPINE & NAVEL**	21 रु.
9.	**UROPATHY**	15 रु.
10.	स्वास्थ्य का दर्पण आरोग्य आपका	15 रु.
11.	प्रभावशाली उपचार हेतु सही निदान आवश्यक	10 रु.
12.	सुखी जीवन का मूलाधार अहिंसक जीवन शैली	15 रु.
13.	निर्दोष, स्वास्थ्यवर्धक जीवन शैली	11 रु.
14.	प्रभावशाली अहिंसक चिकित्सा पद्धतियाँ (प्रथम संस्करण)	40 रु.
15.	आपका आरोग्य आपके पास	25 रु.
16.	निर्दोष श्रमणोपचार	15 रु.
17.	स्वास्थ्य का अमूल्य खजाना : मानव मूत्र	20 रु.
18.	भोजन हेतु पशु हिंसा अनुचित	10 रु.
19.	क्या हम स्वस्थ रहना चाहते हैं?	15 रु.
20.	प्रभावशाली स्वावलम्बी लीवर शुद्धिकरण चिकित्सा	10 रु.
21.	प्रभावशाली अहिंसक चिकित्सा पद्धतियाँ (संशोधित संस्करण)	45 रु.
22.	पीने योग्य शक्तिवर्धक पानी	10 रु.
23.	स्वास्थ्यवर्धक भोजन कैसा हो?	20 रु.
24.	स्वास्थ्य मंत्रालय स्वावलम्बी चिकित्सा पद्धतियों के प्रति कितना सजग?	20 रु.
25.	अहिंसक चिकित्सा पद्धतियों पर चिन्तन आवश्यक	20 रु.
26.	क्या अहिंसक जीवन जीना संभव है?	15 रु.
27.	स्वास्थ्यवर्धक भोजन कैसा हो?	20 रु.
28.	बिना दवा मधुमेह (डायबिटीज) का प्रभावशाली उपचार (द्वितीय सं.)	25 रु.
29.	साधना हेतु सजगता आवश्यक	20 रु.
30.	क्या हम अपने कर्त्तव्यों के प्रति सजग है?	20 रु.
31.	अच्छे स्वास्थ्य के मापदण्ड	20 रु.
32.	अच्छी चिकित्सा के मापदण्ड	20 रु.
33.	आत्म-वैभव (श्रीमती रतन चोरडिया)	25 रु.
34.	आपका उपचार आपके घर (श्रीमती रतन चोरडिया)	25 रु.
35.	मृत्यु एक महोत्सव (श्रीमती रतन चोरडिया)	15 रु.
36.	दो कदम लक्ष्य की ओर (श्रीमती रतन चोरडिया)	11 रु.
37.	मैं कौन हूँ? (श्रीमती रतन चोरडिया)	50 रु.

Letter dt. **09.03.2017** to Prime Minister Seeking Clarifications for Basic Parameters of Good Health, Therapy and Correct Diagnosis followed by various reminders in particular letter dt. **09.03.2018, 09.03.2019** and **09.03.2020.** But till today **(01.01.2021)** matter is pending for necessary clarifications

Ref. No. CMC/Mar/2017/606 **Date:- 09/03/2017**

Shri Narendra Bhai Modi
The Hon'ble Prime Minister,
7, Race Cross Road, New Delhi-110011

Sub: To Review National Health Policy & include All Effective Self Reliant Effective Drugless Therapies in Standard System of Treatment.

Respected Sir,
Please refer to my letter Dated **09.03.2016** written before one year followed by various reminders dated **03.05.2016, 01.07.2016, 01.08.2016, 16.09.2016, 08.11.2016, 02.12.2016** and **10.01.2017** which were duly acknowledged by your office. I failed to receive proper clarifications regarding Guidelines, Circulars, Rules or Act which define **Parameters of Good system of Treatment & Parameters of Correct Diagnosis to recognize any therapy as Basic or an Alternative from your office.**

I hope Govt. must have taken appropriate action to include all Non-violent, Effective, Drugless, Self-reliant therapies like Acupressure, Urine, Magnet, Colour, Sun-rays etc. in standard system of treatment?

Since public health is one of the most important issues while framing National Policy, it should not be taken so lightly or neglected so as to be dominated by any specific therapy like Allopathy. Govt. must give proper importance to all Effective-Drugless Therapies rather than blindly following Allopathy, which does not meet the basic requirement of health science.
In my opinion at present Health Ministry is fully guided and ruled by Pharmaceutical Companies and Allopathic Lobby. If it is really true then the title of the Health Ministry should be renamed as Ministry of Allopathy.

I am sure your dynamic leadership will take appropriate action to begin Disease-free India Movement like Clean India Movement.

Yours Truly
(Dr. Chanchal Mal Chordia)

Dr. C.M. Chordia (B.E. Elec.)
Consultant for Various
Effective Drugless Self
Railant Therapies

Managing Trustee	:	Kalyanmal Chanchal Mal Chordia Trust Smt. Ratan Kanwar Chanchal Mal Chordia Charitable Trust
Acting Chairman	:	Prani Mitra Sansthan
Ex. Convener	:	All India S.S. Jain Swadyaya Sangh, Jodhpur
Patron	:	M.B.M. Engineering College Alumini Association
Ex. Chairman	:	Mahaveer International, Jodhpur

स्वस्थ रहें या रोगी : फैसला आपका?

आज हमारी समस्त सोच का आधार जो प्रत्यक्ष है, जो तात्कालिक है, उसके आगे-पीछे प्रायः नहीं जाता। स्वस्थ रहने के लिए हमें रोग के मूल कारणों को दूर करना होगा। शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को क्षीण होने से बचाना होगा। रोग निरोधक क्षमता को बढ़ाने के लिए सृष्टि के नियमों का पालन कर संयमित जीवन जीना होगा। जहां संयम है, सजगता है, समता है, स्वावलम्बन है, सम्यक् श्रम है, साधना है वहां विकारों का अभाव होता है। यही अच्छे स्वास्थ्य का द्योतक होता है।

हमारा स्वास्थ्य हमारे हाथ में है तो हमारे रोग भी हमारे हाथ में हैं। हम जैसा चाहें, वैसा आचरण करें, हमें स्वयं को ही फैसला करना है कि- ''हम रोगी बने अथवा स्वस्थ।''

Printed-Book
Posted Under department of Posts Inland Postal Rates SL 9
No. B, Book Packet Containing Printed Book Require Rs. 1
Postage for weight to 100 grams.

CHANCHALMAL CHORDIA
Chordia Electricals, O/s. Jalori Gate,
Gole Building Road, Jodhpur-342003 (Raj.)
Ph. : 0291-2621454, 94141-34606 (M), 63753-58239 (Whats'app)
E-mail : cmchordia.jodhpur@gmail.com, Website : www.chordiahealth.com